भगवान स्वामिनारायण द्विशताब्दीके उपलक्ष्यमें

स्वामिनारायण परिचय पुस्तकमाला-पुष्प : ४

संप्रदाय का विकास एवं गुरुपरंपरा

श्री हर्षदराय त्रि. दवे

बोचासणवासी श्री अक्षरपुरुषोत्तम संस्था प्रकाशन

भगवान स्वामिनारायण

भगवान स्वामिनारायण द्विशताब्दी के उपलक्ष्यमें

स्वामिनारायण परिचय पुस्तकमाला : पुष्प-४

संप्रदाय का विकास
एवं
गुरुपरंपरा

लेखक

श्री हर्षदराय त्रि. दवे

: प्रकाशक :

बोचासणवासी श्री अक्षरपुरुषोत्तम संस्था

शाहीबाग रोड, अहमदाबाद-३८०००४

प्रकाशक
प्रगट ब्रह्मस्वरूप
स्वामीश्री नारायणस्वरूपदासजी–प्रमुख स्वामी
अध्यक्ष :
भगवान स्वामिनारायण द्विशताब्दी
प्रकाशन समिति
बोचासणवासी श्री अक्षरपुरुषोत्तम संस्था
शाहीबाग रोड, अहमदाबाद–३८०००४
*

द्वितीय आवृत्ति : १०००
दिसम्बर, १९८०
*
मूल्य : रू. ०–७५
*
प्राप्तिस्थान :
श्री अक्षरपुरुषोत्तम मंदिर
* शाहीबाग रोड. अहमदाबाद ३८०००४
* स्वामी ज्ञानजीवनदास मार्ग
स्वामिनारायण चौक, दादर(C.R.)बम्बई४०००१४
* नाणावट, सुरत (गुजरात)
* अटलादरा, वड़ौदा (गुजरात)
* भाईकाका मार्ग, विद्यानगर (गुजरात)
* रजपूतपरा, शेरी नं. ४, राजकोट (गुजरात)
* लाती बजार, भावनगर (गुजरात)
* ६१, चक्रवेरिया रोड (नोर्थ) कलकत्ता २०
तथा गोंडल, भादरा, गढडा, सारंगपुर, बोचासण,
सांकरी आदि संस्थाओंके मंदिरोंमें.

मुद्रक : साधना प्रिन्टरी, घीकांटा रोड
नोवेल्टी सिनेमाके सामने, अहमदाबाद–३८०००१

कृपामृत

भगवान स्वामिनारायण द्विशताब्दीके अवसर पर उनके दिव्य जीवन एवं कार्यसे विशाल जनसमुदाय अवगत हो, इस उद्देश्यसे संस्थाकी प्रकाशन समितिने प्रकाशनोंकी एक विस्तृत योजना बनाई है। जिसके द्वारा उनके जीवन एवं कवन-वचनामृतों को विविध भाषाओंमें समाविष्ट करके प्रकाशित करनेका निर्णय किया गया है। इस मौके पर उनके एकान्तिक भक्तोंको कैसे भुलाया जा सकता है? उनके भक्त सन्त-कवियोंने मध्यकालीन गुजराती-हिन्दी साहित्यमें महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। गुजराती-हिन्दी साहित्यके लब्ध प्रतिष्ठ कवि और लेखकोंके द्वारा उनकी कृतियों का मूल्यांकन करनेवाली पुस्तकश्रेणी प्रकट करनेका भी प्रकाशन समितिने निर्णय किया है।

इन प्रकाशनोंसे आजके साहित्यप्रेमी, अभ्यासी, जिज्ञासु जनसमुदायको संस्कारी साहित्य पढनेका सुअवसर मिलेगा।

इन प्रकाशनोंमें जिन लेखकोंने सहयोग दिया है, उन्हें भगवान स्वामिनारायण, अनादि अक्षरमूर्ति श्री गुणातीतानन्द स्वामी, स्वामीश्री यज्ञपुरुषदासजी (शास्त्रीजी महाराज), स्वामीश्री ज्ञानजीवनदासजी (योगीजी महाराज कृपान्वित करें, यही शुभ कामना।

इस पुस्तकके लेखक श्री हर्षदराय त्रि. दवेका भी प्रकाशन समितिकी ओरसे हम कृतज्ञता व्यक्त करते हैं।

अक्षर मन्दिर,
गोंडल (सौराष्ट्र)

शास्त्री नारायणस्वरूपदास
(प्रमुख स्वामी)
के जय श्री स्वामिनारायण
(अध्यक्ष: भगवान स्वामिनारायण
द्विशताब्दी महोत्सव समिति)

प्रकाशकीय निवेदन

स्वामिनारायण धर्मका तत्त्वज्ञान, साहित्य, संस्कृति, कला, इतिहास आदि विविध विषयों पर अलग अलग छोटी पुस्तिकाओंका प्रकाशन-कार्य बोचासणवासी श्री अक्षरपुरुषोत्तम संस्था द्वारा भगवान स्वामिनारायण द्विशताब्दीके उपक्रममें शुरू हुआ है ।

व्यस्त और यांत्रिक युगका आधुनिक मानव कम से कम शब्दों में और कम से कम समय में ज्यादा से ज्यादा जानकारी प्राप्त करना चाहता है । इस विचारको दृष्टि समक्ष रखकर सरल, सुबोध, रोचक शैलीमें इस पुस्तिकामाला का प्रारंभ करते हुए हम यह आशा रखते हैं कि प्रत्येक जिज्ञासु को इन पुस्तिकाओंके द्वारा स्वामिनारायण धर्मसे परिचित करानेका हमारें इस प्रयासका समाजमें आदर होगा । मूल गुजराती-पुस्तिकाका यह हिन्दी अनुवाद है ।

सीमित पृष्ठों में इस गहन विषयका सांगोपांग विवेचन संभव नहीं है । वाचकवर्ग इस प्रयत्नको परिचयात्मक ही समझे और विषयकी गहराईको यदि जाननेकी भूख पैदा हो तो तत्संबंधी विशाल साहित्य देखें ।

इस पुस्तिकाके लेखक श्री हर्षदराय त्रि. दवे और दूसरे भी साथी सहयोगियोंकी ओर अपनी कृतज्ञता प्रकट करते हुए, और धार्मिक साहित्यप्रेमी विशाल वाचकवर्ग हमारे इस प्रयत्नकी उचित सराहना करके हमें प्रोत्साहित करेंगे ऐसी आशा सह...

—प्रकाशन समिति

हर्षदराय त्रि. दवे—जन्म : १९१२, वीहोर (जि. भावनगर) बम्बई युनिवर्सिटीमें बी. कोम. होने के बाद बम्बईमें ही व्यवसाय किया । भगवान श्री स्वामिनारायण, अक्षरमूर्ति गुणातीतानंद स्वामी, ब्रह्मस्वरूप प्रागजी भक्त, ब्रह्मस्वरूप शास्त्रीजी महाराज आदि अनेक महाकाय ग्रंथांके लेखक और संपादक । 'लाइफ एन्ड फिलोसोफी ओफ स्वामिनारायण' (प्रकाशकः ज्योर्ज एलन एण्ड अन्वीन, लन्डन) के लेखक और 'वचनामृत' एवं 'शिक्षापत्री' के अंग्रेजी भाषांतरकर्ता ।

संप्रदाय का विकास एवं गुरुपरंपरा

'संप्रदाय' शब्द का अर्थ आजकल लोग एक 'वर्तुल' अथवा 'वाड़ा' समझते हैं, अथवा 'अन्धश्रद्धालु या सीमित दृष्टिवाले लोगों का समूह' समझते हैं। कुछ अंशमें यह सत्य भी है।

जिनको आत्मा और परमात्मा के स्वरूपों का विशुद्ध ज्ञान नहीं है और न उनके स्वरूपों की अपरोक्षानुभूति है, ऐसे गुरुओं के द्वारा शिष्य समूह को आत्मा-परमात्मा के विषयमें जो ज्ञान मिला, अथवा अच्छे गुरुओं के पाससे अनधिकारी शिष्य समूह जो भी समझ सका तदनुसार अनेक प्रकार की उपासनाएँ शुरू हो गईं। उन्हीं का आधार लेकर कई संप्रदाय बन गये। उस अपूर्ण जानकारी के सहारे बने विभिन्न वर्तुलोंमें से जनता बाहर न निकल सकी। इसलिए लोगोंने संप्रदाय शब्द को वर्तुल और 'वाड़ा' का पर्यायवाची मान लिया। भारतमें प्रचलित ऐसे कई विभिन्न मतावलम्बी वर्तुल, संप्रदाय के नामसे पहचाने जाने लगे। मानो सत्यशोधक दृष्टि अस्त हो गई। फलस्वरूप, सांप्रदायिक होना संकुचितता का प्रतीक माना गया और बिनसांप्रदायिक होना दृष्टि की विशालता का सूचक माना गया।

हमारे उपनिषदों की कथाओं से प्रतीत होता है कि गुरुने अधिकारानुसार शिष्य को ब्रह्म की व्याख्या समझाई, शिष्यने वह सही मान ली, उसको ही ब्रह्म मान लिया, परिणाम यह हुआ कि अधूरे ज्ञान को समाज में प्रतिष्ठा मिल गई।

छान्दोग्य उपनिषद् में एक कथा है। इन्द्र और विरोचन दोनों आत्मज्ञान प्राप्त करने के लिये प्रजापति के पास पहुँचे। प्रजापतिने उनको कहा कि 'आँख में जो पुरुष दिखाई देता है वही आत्मा है।' दोनोंने एकदूसरे की आँखों में अपना प्रतिबिम्ब देखा और मान लिया कि उनको आत्मदर्शन हो गया। विरोचनने जाकर दानवों को कहा, 'मुझे आत्मदर्शन हो गया है, जो देह है वही आत्मा है, अतः देह की सेवा-पूजा करो, खाओ, पीओ और मौज करो।' इस प्रकार दानवों में देहात्मवाद प्रसारित हुआ और इसी नींव पर उनका संप्रदाय बना।

इन्द्र संस्कारी पुरुष था, आत्मा के असली स्वरूप को जानने की उसको तीव्र जिज्ञासा थी। उसने सोचा कि 'देह तो परिवर्तनशील है। आँख में देखा हुआ देह का रूप, यह तो आत्मा हो नहीं सकती।' गुरुने उसे जो ज्ञान दिया था वह शिष्य के अधिकारानुसार एवं परिस्थिति के मुताबिक था, इस लिये वह तात्त्विक ज्ञान अच्छी तरह नहीं समझ पाया था। अंतमें एकसौ एक वर्ष की साधना के बाद उसे आत्मा के असली स्वरूप को जानने का अधिकार प्राप्त हुआ, तब जाकर प्रजापति के दिये हुए ज्ञान का रहस्य वह समझ पाया।

एक ही गुरु के ये दोनों शिष्य थे। एक अनधिकारी था, इसलिये उसको गुरुने जो कुछ कहा, वह अपनी बुद्धि के अनुसार समझा और वही ज्ञान उसने अपने दानव समुदाय में फैलाया। दूसरा शिष्य इन्द्रने तीव्र जिज्ञासावृत्ति के द्वारा जाना और अपने देवसमूह में वह फैलाया। इस प्रकार सम्प्रदायों का प्रारंभ हुआ।

तैत्तिरेय उपनिषद्में अन्नको, मनको, और आनंदको ब्रह्म कहा है। अपनी अपनी स्थिति और अधिकारके अनुसार किसीने अन्नको, किसीने प्राणको, किसीने मनको, किसीने विज्ञानको और अन्तमें अधिकारी शिष्यने आनंदको ब्रह्म माना। तपके द्वारा आनंद मिलता है तो तपको भी ब्रह्म माना है। शास्त्रीय शब्दों अपरोक्षानुभवी गुरु के बिना यथार्थ रूपमें कभी समझमें नहीं आ सकते, शिष्य भी तेजस्वी, बुद्धिमान और अधिकारी होना चाहिये। इसी लिये उपनिषद्में कहा गया है कि 'वरान्निबोधत'—श्रेष्ठ पुरुषोंको खोजकर, उनसे ज्ञान प्राप्त करो।' श्रेष्ठ पुरुष शिष्योंके अधिकारकी पूरी परीक्षा करके उनको आत्मा और परमात्मा के स्वरूपों का विशुद्ध ज्ञान देते हैं।

इस प्रकार अनेक मतमतांतर एवं संप्रदाय चल पडे। प्रत्येकने अपनी बातको सच्ची मान ली, तदनुसार उसने अपना वर्तुल या 'वाडा' बना लिया। उसमेंसे बाहर निकलने के लिये अति आवश्यक सत्यशोधक दृष्टि का अनुशीलन ही नहीं किया। इतना ही नहीं, वह कहने लगा कि हमारा ही संप्रदाय सच्चा है, और संप्रदाय झूठे हैं। वास्तवमें जिस संप्रदायमें जितना सत्यांश है, वह अवश्य उपादेय है, परंतु सम्यक् सत्य, जिसको समझ लेनेसे परमात्मा के असली स्वरूपका यथार्थ परिचय होता है, उस सत्य का, प्रत्येकने अपनी बुद्धि पर स्थापित किये वर्तुल अथवा वाडेमें, अभाव दृष्टिगोचर होता है।

इस विषय पर एक दूसरा उल्लेख भी विचारणीय है:

"संप्रदायों द्वारा धर्म हमारे समक्ष अभिव्यक्त होता है और इसी लिये संप्रदाय, धर्मको जीवनमें स्थान दिलानेवाली प्रेरक संस्था है।"

" संप्रदायका मतलब ही यह है कि गुरुके द्वारा शिष्यको आत्मा और परमात्माके विषयमें दिया हुआ विशुद्ध ज्ञान। संप्रदाय माने परमात्मा अथवा इष्टदेव विषयक विशेष प्रकारकी समान मान्यता रखनेवाले और उस पर आधारित समान धार्मिक एवं नैतिक आचार एवं व्यवहारका नियमबद्ध आचरण करनेवाले मानवोंका व्यवस्थित तथा संवैधानिक संघ अथवा समुदाय। ऐसे सुग्रथित एवं एकत्रित जनसमुदायमें जुटे हुए प्रत्येक व्यक्तिका श्रद्धाकेन्द्र और मानबिन्दु समान होता है। सामान्यतया उनकी आस्थाका केन्द्र, नैतिक मूल्य और जीवन दृष्टि भी एक ही होती है। वे अपने आदि गुरु अथवा संस्थापक के विषयमें पूर्णताकी भावना रखते हैं। उनमें कर्मकाण्ड, विधिविधान, सेवापूजा, प्रार्थना, व्रतोत्सव पद्धति आदि विषयोंमें समानता होती है। उसमें प्रवेश पाने के लिये शरणागति के लिये विशेष प्रकार की दीक्षाविधि या संस्कारविधि होती है। अवतारवाद पर उनका पूरा भरोसा होता है। परंपरागत ज्ञान एवं संप्रदाय के प्रसारणके लिये गुरुपरंपराकी एक पद्धति होती है। इस प्रकार नैतिक, धार्मिक एवं आध्यात्मिक मूल्योंका प्रसारण करना, यह संप्रदायका हेतु है; साथ साथ अपने परिवेशमें आनेवाले व्यक्ति एवं समष्टिका प्रेय और श्रेय करना यह भी हेतु है।"

" आचार्य याने 'आचिनोति हि शास्त्रार्थान् आचारे स्थापयत्यपि' – शास्त्रोंके अर्थोंका सच्चा अर्थघटन, संकलन और समन्वय करके उन अर्थोंकी शिष्योंके आचार-व्यवहारमें जो स्थापना करता है वही आचार्य है। आचार्य, अपना यह कार्य संप्रदायका निर्माण करके ही कर पाता है।" [१]

---

१. 'स्वामिनारायण संप्रदाय और भारतीय संप्रदाय' प्रा. रमेश म. दवे

परमात्मा परम सत्य है, फिर भी वह परम सत्य कोई तत्त्व नहीं है, लेकिन वह एक स्वरूप है। वह अपनी शक्तिसे व्यापक है और स्वरूपसे मूर्तिमान है। परमात्माका स्वरूप इंद्रियों एवं अन्तःकरणसे अगोचर है, इस लिये वह स्वरूप दिखाई नहीं देता, लेकिन उसकी शक्तिका व्यापक रूपसे दर्शन होता ही है। इस प्रकार परमात्माके सम्यक् स्वरूपके ज्ञानके अभावमें जिसको जैसा समझमें आया, उसने उस तरह परमात्माके स्वरूपके विषयमें लोगोंको समझाया।

छान्दोग्य उपनिषदमें उद्दालक ऋषि श्वेतकेतुको समझाते हैं कि 'नमकके ढेलेको जलमें पिघला देने पर वह अलग रूपसे भले ही न दिखाई दे, फिर भी वह जलमें है अवश्य। उसी प्रकार परमात्मा, इन्द्रियों एव अन्तःकरणके द्वारा भले ही न दिखाई दे, तो भी वह सर्वत्र है ही, सारे विश्वका वह आत्मा है, वही तू है, वही तू है; **तत्त्वमसि।**'

वेद के ऐसे महावाक्योंके अर्थ, परमात्मा के स्वरूपवर्णन में कोई कमी न रह जाय इस प्रकारसे स्पष्टतापूर्वक सम्यक् रूपसे केवल परमात्मा स्वयं ही बता सकते हैं। अतः परमात्मा ही अनादि गुरु हैं। अक्षरब्रह्म, जिनको परब्रह्मकी अपरोक्षानुभूति है, वह उस अनादि गुरु के परम शिष्य हैं। इस तरह गुरु के द्वारा शिष्यमें सनातन स्वरूपोंका ज्ञान आ जाता है। उसके बाद उत्तरोत्तर शिष्य प्रशिष्योंमें इस ब्रह्म–परब्रह्मके पूरे स्वरूपोंका ज्ञान–प्रवाह बहता चला जाता है, यही तो संप्रदाय है।

संप्रदाय शब्दका यह अर्थ यदि समझ में आ जाये तो संप्रदाय शब्दकी विशालता समझी जा सकती है। फिर तो वह वर्तुल या बाडा न रहकर, समष्टिरूप ब्रह्मभावको प्राप्तकर परमात्माके स्वरूपका ज्ञान प्राप्त करनेका एक और अद्वितीय स्थान, संस्था

अथवा तो विश्वविद्यालय बन जाता है। संप्रदायको इस तरह समझा जाये और समझाया जाये तो वर्तुल या वाडा शब्दसे परिचित सारे के सारे संप्रदायोंका एकीकरण हो जायेगा। जीव-दृष्टि टल जायेगी और सबको ब्रह्मदृष्टि मिल जायेगी। जैसे जैसे यह ज्ञान फैलता जायेगा, वैसे वैसे ब्रह्म के महावर्तुलमेंसे पैदा हुए ये अनेक छोटे छोटे वर्तुल अपनी सीमाएँ लाँघकर पुनः ब्रह्मके महावर्तुलमें लीन हो जायेंगे। अन्तमें ब्रह्म और परब्रह्म के ज्ञानकी प्राप्तिके लिये एक ही विश्वसंप्रदाय रहेगा।

भरत मल्लिकने अमरकोशकी टीकामें संप्रदाय शब्दका अर्थ लिखा है, 'गुरुपरंपरागत : सदुपदेशः, शिष्टपरंपरावतोर्णः उपदेशः।' श्री मोनियर विलियम्सने गृह्य और सौत्र सूत्रके आधार पर संप्रदाय शब्दका अर्थ किया है : 'दृढ मान्यतापूर्वक निश्चित किया हुआ सिद्धांत गुरु अपने शिष्यको दे और वही शिष्य गुरु-पद पाकर अपने शिष्योंको दे।'*

इस तरह ब्रह्म और परब्रह्मके स्वरूपोंका ज्ञान, गुरुके द्वारा शिष्यको और उसके द्वारा अपने शिष्यको अविच्छिन्नतापूर्वक प्रदान जिसमें किया जाता हो वह है संप्रदाय। गुरु-शिष्यकी यह परंपरा जब टूट जाती है, तब वह संप्रदाय नष्टप्राय हो जाता। फिर उसमें केवल विधिविधानों (dogmas)की प्रधानता रह जाती है। उस विधिविधानोंके करनेवाले और करानेवालेकी ब्रह्मपथकी ओर गति नहीं होती है। उस गतिको अखंड रखनेके लिये, ब्रह्मपथ हमेशाके लिये खुला रखनेके लिये, इस धरती पर ब्राह्मी स्थितिवाले सद्गुरुका अखंड प्राकट्य जरूरी है। उनके द्वारा ही संप्रदायका अस्तित्व रहता है, विकास होता है।

* 'Established doctrine trarsmitted from one teacher to another.' – Sir Monier Williams.

मोक्षमार्गमें ब्राह्मी स्थितिवाले गुरुकी आवश्यकताका स्वीकार करना ही पडेगा। भगवान वेदव्यासने इसी लिये कहा है कि 'तस्माद् गुरुं प्रपद्येत – इसलिये गुरुकी शरणमें जाना चाहिये।' लेकिन वे गुरु कैसे हो? 'शाब्दे परे च निष्णातं ब्रह्मण्युपशमाश्रयम् –शब्दब्रह्म जो अक्षर है, जिसने परमात्माके स्वरूपमें उपशमभावप्राप्त किया है, ऐसे विशुद्ध सद्गुरु हो।' श्री शंकराचार्यने तो गुरुको साक्षात् परब्रह्म ही माना है। ब्राह्मीस्थितिवाले संतमें परब्रह्म अखंड रूपसे प्रकट रहता है, इसीलिये संत वास्तवमें भगवत्स्वरूप ही हैं। ऐसे शुद्ध गुणातीत संत प्राप्त होने पर ही, जीवमें लगी हुई अविद्या रूप माया टल जाती है; जीव शुद्ध होकर ब्रह्मभाव प्राप्त कर के पुरुषोत्तम की भक्तिका अधिकारी बनता है।[1]

उनमें अनादि गुरु पूर्ण पुरुषोत्तम है अथवा अनादि अक्षरब्रह्म है, जो उनका दिव्य धाम है, शरीर है। उसके सम्बन्ध से ही मूल अज्ञान टल जाता है। पूर्ण पुरुषोत्तम तथा उनका धाम अक्षर ब्रह्म, दोनों मूल मायाका पराभव करते हैं। वचनामृतमें भगवान स्वामिनारायण कहते हैं, "वह महामाया उस अक्षरब्रह्मके प्रकाशमें लीन हो जाती है।"[2] और "भगवान जब माया में आते हैं तब वह माया भी अक्षरधाम–रूप होती है।"[3] ये दोनों स्वरूप मायासे पर होनेके कारण, वे ही मायाको विदीर्ण कर सकते हैं, उनकी यह अमोघ शक्ति है।

गुरुका यह महत्त्व है। "जिस गुरुकी दिव्य चेतना अपने गुरुके द्वारा जाग्रत हुई हो, ऐसे गुरुओंकी परंपराके द्वारा ही

---

१. वचनामृत–पंचाला–७; २. वच. ग. प्र. १२; ३. वच. वर. ७

धर्मकी कड़ियाँ जुडी हुई रहती हैं।" [१] संप्रदायका अस्तित्व अविच्छिन्न रखनेका साधन पुरुषोत्तम ही है अथवा उनके धाम-रूप अक्षरब्रह्म है।

इसी लिये ये दोनों स्वरूप धरती पर आयें और उन्होंने धरतीको एक नवीन दर्शन दिया–अपने दिव्य फिर भी लौकिक स्वरूपोंका, अपने तत्त्वज्ञानका, अपने नियमोंका, अपने परमहंसोंका एवं अपने कार्यकलापका। तीस वर्षके अत्यल्प समयमें भगवान स्वामिनारायणने कलिमल धोकर पृथ्वीकी कायाको ब्रह्मके प्रकाशसे प्रकाशित कर दी, ब्रह्म–रससे प्लावित कर दी। वज्रसार जैसी मूल माया, जिसे हृदयग्रन्थि अथवा अव्यक्तलिंग देह अथवा वासनामय कारण शरीर कहते हैं, जिसके पाशमें फँसे छोटेमोटे जीव, अपनी देहसे पृथक् आत्माको, उसके असली स्वरूपको कभी प्राप्त नहीं कर सकते। ऐसे जीवोंको इस मायासे मुक्त करके, आत्म-निष्ठ करके ब्रह्मरूप बनाकर उन्होंने अपने लाखों अनुयायियोंको, ब्रह्मधामके योग्य अधिकारी बनाये, अक्षरधामकी राह उनके लिये उद्घाटित कर दी। हजारों वर्षों की तपश्चर्या एवं साधनाके द्वारा जो कभी सिद्ध नहीं हो सकता वह ब्रह्मभाव उन्होंने अपने अक्षरब्रह्मके संबंधसे अपने स्वरूपका ज्ञान कराके सिद्ध कर दिया।

उन्होंने विशुद्ध ब्रह्मभावको ही ब्राह्मी स्थितिकी अंतिम अवस्था कही है "तीनों अवस्थाओं एवं तीनों शरीरोंसे पर स्वस्वरूपको

---

१ " The skeleton of Hinduism is the Guru. The continuity of divine awareness which runs through the succession of guru by guru is the chain that binds religion together." – 'Godmen of India' By Peter Brent, Allen Lane, The Penguin Press, London 1972; Pg. 1

जो व्यक्ति, अतिशय देदीप्यमान स्थितिमें देखता है, उस प्रकाशमें भगवानकी मूर्ति जैसी प्रकट प्रमाण है तैसी ही अतिशय प्रकाशसे युक्त देखता है, वही स्थितिसे संपन्न है। जब तक ऐसी स्थिति प्राप्त नहीं होती तब तक वह व्यक्ति भले ही भगवानका भक्त भी हो तो भी उसके सिर पर विघ्न मँडराते रहेंगे। शिवजी ऐसी स्थिति में नहीं वर्तते थे, इसीलिये वे मोहिनी स्वरूपमें मुग्ध हुए। ब्रह्माजी ऐसी स्थितिमें नहीं वर्तते थे, अतः एव वे सरस्वतीको देखकर मुग्ध हुए। नारद ऐसी स्थितिमें नहीं वर्तते थे, जिससे उनको अपने विवाहका संकल्प हुआ।' ० इस स्थितिको विशेष स्पष्ट करते हुए वे आगे कहते हैं कि 'सुवर्ण और स्त्री अति बंधनकर्ता हैं, इन दोनोंका बंधन तब नहीं हो सकता, जब प्रकृति और पुरुषसे पर ऐसा जो शुद्ध चैतन्य ब्रह्म है, उसी एकको ही सत्य समझे और जो ब्रह्मको ही अपना स्वरूप मानकर, स्वयं ब्रह्मरूप होकर परब्रह्मका भजन करे, ऐसे व्यक्तिको सुवर्ण और स्त्री बन्धनकर्ता नहीं होते, बाकी औरोंके लिये तो वे अवश्य बन्धनकर्ता हैं ही।' *

इस प्रकार 'देहभावसे अतीत होना' यह बड़ों बडोंके लिये भी कितना मुश्किल है और शुद्ध ब्राह्मी स्थिति कितनी दुष्प्राप्य है, यह स्पष्ट होता है। साथ साथ यह भी स्पष्ट हो जाता है कि शुद्ध ब्राह्मी स्थिति अर्थात् मुक्तिका मार्ग उनके प्राकट्यके साथ ही धरती पर प्रकट हुआ।

उन्होंने अक्षरब्रह्म एवं परब्रह्मके स्वरूपोंका स्पष्ट ज्ञान दिया। अक्षरब्रह्म उनका दिव्य धाम है और परब्रह्म स्वयं खुद हैं। अक्षरब्रह्म साकार स्वरूपमें उनकी सेवामें है और निराकार रूपमें अनंत मुक्तात्माओंको धारण कर रहे हैं। उनकी यह विशिष्ट

---

० वचनामृत ग. प्र. २३.   * वचनामृत ग. म. ३०

महत्ता है कि, अनंत कोटि ब्रह्मांड, उनके रोमके अग्रभाग पर स्थित जो जल हैं, उसमें बुद्‌बुद्‌ तरंगकी तरह पैदा होते हैं और विलीन होते हैं। उनकी इस महत्ताका खयाल तो उनके विशुद्ध स्वरूपके साथ एकता स्थापित न हो, तब तक आ ही नहीं सकता। यह एकता सिद्ध करनेका साधन श्रीजी महाराजने बताया है, 'उनके स्वरूप में प्रीति, वही आत्मदर्शनका साधन है, उनकी महिमा समझनेका भी यही साधन है और भगवानके साक्षात्‌ दर्शनका भी यही साधन है।' *

अपना – परब्रह्मका स्वरूप उन्होंने सदा साकार कहा हैं। सदा साकार होते हुए भी वह मनुष्यकी तरह नहीं है। मायाके समूचे भावोंसे वह पर है। उनके मनुष्य स्वरूपको दिव्य समझना यही मायाको ऊल्लंघनेका साधन है, ऐसा उन्होंने बताया है।

अक्षरब्रह्म एवं परब्रह्मके बीच हमेशा सेवकसेव्यभाव रहता है। अक्षरब्रह्म सेवक है और पुरुषोत्तम सेव्य अर्थात्‌ स्वामी हैं। उन दोनोंके बीच ऐसा संबंध होने पर भी शरीर और शरीरीके बीच जैसी एकता है, बिल्कुल ऐसी ही एकता है। अक्षरब्रह्म, पुरुषोत्तमका शरीर है '**यस्याक्षरं शरीरम्‌**' और पुरुषोत्तम उसका शरीरी है। उन दोनोंके बीच इस प्रकार अपृथक्‌सिद्धभाव होनेके कारण 'जहां भी पुरुषोत्तमकी मूर्ति है, वहीं अक्षरधामका मध्य है।' ० इसलिये इन दोनों स्वरूपोंको कभी अलग नहीं किया जा सकता।

'यह भगवान उनके संत पृथ्वी पर अवश्य विचरण करते ही रहते हैं।' + इसी लिये ब्रह्म–परब्रह्म अर्थात्‌ अक्षर और पुरुषोत्तम, स्वामी और नारायणके रूपमें धरती पर प्रकट हुए।

---

* वचनामृत वर. १९; ० वचनामृत ग. म. ४२.

+ वचनामृत वर. ११

उनके दिव्य स्वरूपोंका ज्ञान इस धरती पर हमेशा ऐसे शुद्ध गुणातीत संतों द्वारा फैलता ही रहेगा और इस प्रकार संप्रदायकी अखंडितता हमेशा सुरक्षित रहेगी ही, यह निर्विवाद तथ्य है ।

श्रीजी महाराजके समयमें गोपालानंद स्वामी, मुक्तानंद स्वामी, ब्रह्मानंद स्वामी, कृपानंद स्वामी, स्वरूपानंद स्वामी, निष्कुलानंद स्वामी आदि कई संत उनकी कृपासे ब्रह्मस्थितिको प्राप्त हुए, इतना ही नहीं, परंतु श्रीजी महाराजकी कृपासे उन्होंने औरोंको भी महाराजके सर्वोपरी स्वरूपकी निष्ठा दृढ करवाई ।

दादा खाचर, पर्वतभाई, गोवर्धनभाई, सुरा खाचर, मांचा खाचर आदि अनेक गृहस्थ भक्तोंको, एवं लाडूबा, जीवूबा, मीणबा, लाधीबा, माताजी आदि स्त्री भक्तोंको भी ऐसी स्थिति उन्होंने सिद्ध करा दी । उन्होंने अक्षर एवं पुरुषोत्तमके दिव्य स्वरूपोंका ज्ञान न केवल वाच्यार्थ रूपमें अपि तु उनके आश्रितोंके जीवनमें व्याप्त हो और उनका ब्रह्मभावमें रूपान्तर हो इस प्रकार लक्ष्यार्थ रूपमें (applied knowledge) सिद्ध किया । यह उनकी सिद्धि है । महाकवि न्हानालालके शब्दोंमें कहें तो उन्होंने 'निर्मली छिड़क दी और गुजरातको ब्रह्मार्द्र कर दिया !'

उनके साथ सद्‌गुरु गुणातीतानंद स्वामीके रूपमें प्रकट हुए अनादि अक्षरब्रह्मकी महिमा भी उन्होंने सबको समझाई । 'यह हमारे रहनेका अक्षरधाम है, उनकी महत्ता गद्दीके कारण नहीं है, अपि तु अनादिसे है ।' जूनागढके नवाबको महाराजने कहा था 'हम यहाँ रहें या हमारे जैसेको यहाँ रखे ?' इन शब्दोंके साथ महाराजने श्री गुणातीतानंद स्वामीको जूनागढके स्वामिनारायण मन्दिरका महंतपद दिया । सोरठके हरिभक्तोंको महाराज अपने दिव्य सुख पूरी तरह नहीं दे पाये थे, अत:

उन्होंने सोरठके हरिभक्तोंको अपना सर्वस्व इस साधुको कृष्णार्पण कर दिया। पंचालामे संतोंकी सभामें उन्होंने कहा भी कि 'मुझ जैसा कोई भगवान नहीं है और यह गुणातीतानंद जैसा कोई साधु नहीं है।" उनके कपारमें तिलक करके उन्होंने कहा था, 'देखिये हमारा तिलक।' स्वामीको गढडासे जूनागढ भेजते वक्त महाराजने कहा था,

'निर्गुण ब्रह्म सुलभ अति सगुण न जाने कोई।
सगुण चरित्र नाना विधि सुनि मुनि मन भ्रम होई॥ [१]

पीपलाणाके कुरजी दवेको महाराजने कहा था, 'यह गुणातीतानंद स्वामी, जो हमारा अक्षरधाम है, वह अब हम आपको भेंटमें दे रहे हैं। रामानंद स्वामी पीपलाणा पधारे, उस वक्त वधाईके निमित्त हम आपको कुछ दे नहीं पाये थे, लेकिन आज यह अक्षरधाम, हम तुम्हें उपहारस्वरूप दे रहे हैं।' उनकी महत्ता समझानेके लिये और उनके द्वारा ही अपने स्वरूपका सबको परिचय होगा यह मर्म समझाते हुए महाराजने सभी संतोंको आदेश दिया कि: 'सभी संत सालमें एक बार तो जूनागढ जरूर जायें, मन्दिरमें स्वामी गुणातीतानन्दका सत्संग करें।' [२] धाममें जाते वक्त श्रीजी महाराजने जूनागढसे स्वामीजीको बुलवाया और उनके प्रति अपना अपार स्नेह व्यक्त करते हुए कहा कि 'मीठा वहाला केम विसरुं मारुं तमथी बांधेल तन हो' हे प्यारे? मैं तुम्हें कैसे भूल सकता हूँ, मेरा और तुम्हारा जो गाढ वन्धन हुआ है।'

---

१ निर्गुण ब्रह्मका ज्ञान सबको सुलभ है, परंतु उसके प्रकट–सगुण स्वरूपको मायिक जीव नहीं पहचान सकते। उनके मनुष्य-चरित्र देखकर बडे बडे मुनिओंके मनमें भी भ्रान्ति पेदा हो जाती है।

२ पुरुषोत्तमप्रकाश: प्र–३२. लेखक–निष्कुलानन्द स्वामी

महाराज जब धाममें पधारें तब स्वामीको दर्शन देकर कहने लगे 'स्वामी! मै क्या कहीं गया हूँ? मैं तो तुममें अखंड रहा हूँ, अखंड रहा हूँ, अखंड रहा हूँ!' इस प्रकार अंतर्धान होते वक्त अपने स्वरुपका प्राकट्य अब अनादि अक्षरब्रह्म श्री गुणातीतानंद स्वामीके द्वारा रहेगा, यह सूचित कर दिया।

श्रीजी महाराजने धरती पर भागवत धर्मकी स्थापना की। धार्मिक अराजकताके समयमें स्वयं यहाँ पधार कर धर्मके चार अंग धर्म, ज्ञान, वैराग्य और भक्ति–अपने परमहंसोंमें मूर्तरूपमें प्रकट करके, आज तक पृथ्वी पर जिनका दर्शन असंभव था, ऐसे अपूर्व परमहंस उन्होंने बनाये और उनके द्वारा सच्ची साधुताका विश्वको दर्शन करवाया, निष्काम धर्मकी नीव मजबूत की, 'ब्रह्मचर्य ब्रह्मस्वरूप है' यह सूत्र परमहंसोंके जीवनमें दृढ करवाकर उनको ब्राह्मीस्थितियुक्त बनाये। इतना ही नहीं, गृहस्थ हरिभक्तों एवं स्त्री–भक्तोंको भी यह स्थिति सिद्ध करवा दी। अत एव सद्. मुक्तानंद स्वामीने गाया है कि :–

'प्रेमें प्रगट्या रे सूरज सहजानन्द अधर्म अन्धरुं टाळियु'*

सोरठ प्रदेशमें स्वामीकी गुणातीत–वार्ताओंका तांता लग गया। देहाभिमान और पंच विषयोंके खंडनकी, ब्रह्मरूप होनेकी और श्रीजी महाराजके सर्वोपरी स्वरूप विषयक निष्ठाकी वार्तोंका उद्घोष सारे सोरठ प्रदेशमें फैल गया, उसका प्रतिघोष ठेठ गुजरात तक पहुँचा।

डभोईके करुणाशंकर जूनागढ गये थे। मंदिरमें स्वामीके

---

* सहजानंद–सूर्यका प्रेमसे उदय होते ही अधर्म–अन्धकार नष्ट हो गया।

आस पास जमा हुई सभा उन्होंने देखी। चकोर जैसे चन्द्रकी ओर देखता रहता है, उसी तरह सभी लोग स्वामीके स्वरूपको देख रहे थे और उनकी बातें सुननेमें तल्लीन हो गये थे। यह देखकर करुणाशंकर ने स्वामी को पूछा, 'मैं कई जगह घूमता फिरता आ रहा हूँ, मैंने देखा कि सभी जगह सत्संग वृद्ध हो गया है। लेकिन यहाँ तो सत्संग युवान दिखाई देता है, उसका कारण क्या?' स्वामीने कहा 'कारण यही कि यहाँ महाराज प्रकटरूप से विराजमान हैं।' जागा भक्त को उन्होने कहा कि 'श्रीजी महाराज का आकार तुमको नहीं दीखता, परंतु एक रोम का भी हेरफेर नहीं है।'

स्वामी में श्रीजी महाराज के प्राकट्य के बारे में ऐसे तो कई वाक्य हैं। गोपालानंद स्वामीने अपने शिष्यों को जूनागढ भेजा था। बोटाद के शिवलाल सेठ को उन्होंने कहा था कि 'व्यवहार और मोक्ष दोनों यदि चाहते हो तो जूनागढ गुणातीतानंद स्वामी के पास जाओ।' प्रागजी भक्त को उन्होंने कहा था, 'मैंने दिये हुए वचन स्वामी पूरा करेंगे।' जागा भक्त को उन्होंने कहा था, 'जूनागढ जाकर त्यागी बनकर स्वामी के पास रहो, उसमें मेरी प्रसन्नता है।' केशवजीवनदास को कहा 'यह गुणातीतानंद स्वामी साक्षात् अक्षरधाम है।' ऐसे अनेक भक्तों–सन्तों को उन्होंने जूनागढ भेजा था, क्योंकि वहाँ ब्रह्मविद्या का अखाडा खुला हुआ था!

'स्वामी द्वारा महाराज प्रकट हैं' ऐसी प्रतीति कइयों को हुई। पुरुषोत्तम गये नहीं हैं, परंतु अपने अनादि शिष्य द्वारा प्रकट ही हैं। उस शिष्यवर को उन्होंने अपना गुरुपद सौंप

दिया था। स्वामी की बातों से पंचविषयों के मूल उखड रहे थे। लोग ब्रह्मरूप हो रहे थे, और पुरुषोत्तम के सर्वोपरी स्वरूप की निष्ठा सभी के अंतर में दृढ हो रही थी। इस प्रकार ब्रह्म–परब्रह्म के दिव्य स्वरूपों के ज्ञान का प्रदान अविरत चल रहा था।

स्वामी के शिष्यों में प्रागजी भक्त का स्थान अग्रगण्य है। स्वामी जागा भक्त, स्वामी योगेश्वरदासजी, स्वामी बालमुकुन्द-दासजी, माधवप्रियदासजी, माधवचरणदासजी, अचिन्त्यानंदजी आदि संत तथा वंथली के कल्याणभाई, उपलेटा के लालाभाई, अर्जुनभाई, गणोद के दरबार अभयसिंह, बोटाद के शिवलाल सेठ, वसो के वाघजीभाई आदि कई त्यागी एवं गृहस्थ, स्वामी के संबंध से ब्रह्मभाव को प्राप्त हुए थे।

प्रागजी भक्तको तो उन्होंने अपरोक्षानुभूति एवं श्रीजी महाराजके स्वरूपका साक्षात्कार करवाया था। उनकी इस सिद्धिके कारण कुछ लोगोंको उनके प्रति ईर्ष्याभाव भी पैदा हुआ। उनमें से ईस लोगोंने स्वामीको कहा कि 'ईस प्रागजी भक्तको आपने जो ऐश्वर्य दिया है, वह वापस ले लीजिये।' प्रत्युत्तरमें स्वामीने कहा कि " मैंने जो ऐश्वर्य उसको दिया है वह ढीला–कच्चा नही है उसकी नींव तो पाताल तक पहुँची हुई है, किसी हालतमें वह वापस नहीं खींचा जा सकता।' उनकी इस अपूर्व ब्राह्मी स्थिति और श्रीजी महाराजके साथके तादात्म्यभावको न परखनेवाले पवित्रानंद स्वामीने उनसे कहा कि 'प्रागजी! मैं तुम्हें विमुख करूँगा। तब प्रागजी भक्तने कहा 'स्वामी! तुम तो क्या, स्वयं सहजानंद स्वामी भी यदि मुझे विमुख करना चाहे तो भी में विमुख होनेवाला नहीं हूँ।' ये शब्द श्रीजी महाराजके प्रति उनकी

आध्यात्मिक एकताके सूचक थे । किन्तु यह मर्म बहुत कम लोग समझ सके ।

अपने गुरुके द्वारा प्राप्त ब्रह्म–परब्रह्मके दिव्य ज्ञानका पदान वे सबको करते थे । अचिन्त्यानंद ब्रह्मचारीकों उन्होंने कहा, 'ब्रह्मचारी महाराज ! यह मूल अक्षर चला जा रहा है, उसके स्वरूपमें जिसकी वृत्ति स्थिर होंगी, वह कृतार्थ हो जायेगा ।' पवित्रानंद स्वामीको भी उन्होंने समझाया कि, 'स्वामी स्वयं मूल अक्षर–ब्रह्म है ।' जूनागढके कई त्यागियों एवं गृहस्थ हरिभक्तोंको भी उन्होंने स्वामीके स्वरूपका ज्ञान करवाया । और उनके प्रति दृढ निष्ठा पैदा करवाई । उन्होंने उद्घोष किया कि 'यह जो सोया है वह अक्षर है, खाता है वह अक्षर है, बैठा है वह अक्षर है ।' इस प्रकार मुमुक्षुओंके अंतर में दिनरात 'अक्षर' 'अक्षर' 'अक्षर' शब्दका सतत गुंजन शुरू हो गया ।

स्वामीने भी अपने शिष्योंको प्रागजी भक्तकी महिमा कही; 'यह प्रागजी तो मणिधर हो गया है, श्रीजीको अखंड धारण करके वह ब्रह्मस्वरूप हो गया है...हमने तो अब निवृत्ति ले ली है, कथावार्ता करने का मेरा कार्य प्रागजीको सौंप दिया है, श्रीजी महाराजने अक्षरधामकी जो चाभी हमको सौंपी थी, वह हमने अब प्रागजी भक्तको सौंप दी है ।'

इस प्रकार स्वामीने निश्चित रूपसे अपने स्थान पर प्रागजी भक्तको प्रतिष्ठित कर दिया था । प्रागजी भक्तकी अपूर्व ब्रह्म-स्थितिकी प्रतीति अनेक भावुकोंको हुई थी । स्वामीने अन्तर्धान होनेका संकल्प किया और जूनागढ छोडते वक्त उन्होंने कहा, 'चालीस वर्ष, चार महिने और चार दिन हम इस मंदिर में रहे, अब हम संत्संगमें घूमेंगे और महुवा जाकर रहेंगे ।' 'महुवा'

प्रागजी भक्तका जन्मस्थान है, अतः उपरोक्त शब्दोंका मर्मार्थ यही है कि 'अब प्रागजी भक्त द्वारा श्रीजी महाराजका पृथ्वी पर प्राकट्य रहेगा।' गुणातीत स्थितिके गुरु (स्वामी तथा प्रागजी भक्त) ओंकी देह यद्यपि भिन्न थी, परंतु उनके बीच तात्त्विक एकता थी।

अब ब्रह्म–परब्रह्म के ज्ञानप्रदानके माध्यम बने प्रागजी भक्त। गुणातीतानंद स्वामी अन्तर्धान हुए फिर भी प्रागजी भक्त और उनकी विशेष परम्पराके द्वारा गुणातीत ज्ञानका प्रसारण अविरत चलता ही रहा। संप्रदाय विकसित होता रहा। अक्षर पुरुषोत्तम अर्थात् स्वामी और नारायण के स्वरूपोंका प्राकट्य पृथ्वी पर एक या दूसरे रूपसे अखंड चलता रहा, संप्रदाय बद्धमूल बनता गया।

अब मुमुक्षुओंको प्रागजी भक्तके स्वरूपमें श्रीजी महाराजके प्राकट्यकी प्रतीति हो गई। ठासराके गिरधरभाईको वडतालमें हरिकृष्ण महाराजने प्रत्यक्ष दर्शन दे कर कहा: 'मैं अब प्रागजी भक्तके द्वारा प्रकट हूँ। उनकी सेवा करोगे तो एकान्तिक स्थिति सिद्ध होगी।' कोठारी वेचर भगत जैसे महारथी भी प्रागजी भक्तकी ब्राह्मीस्थिति से आकर्षित हुए। पवित्रानंद स्वामीको उन्होंने यह प्रतीति करवाई कि स्वामी अक्षर हैं और वही अक्षरभाव फिलहाल प्रागजी भक्तमें प्रकट है, गुणातीत स्थितिकी अखंडता यथावत् रही है।

वडोदराके उमियालाल वकील, वडोदरा राज्यके पेटलाद प्रान्तके सूबा रावसाहब रामचंद्र बलवंत नायक, वांसदाके दीवान श्री झवेरभाई अमीन, माळियाके मोडजी दरबार आदि हरिभक्तोंके उपरांत ठेठ खानदेश तकके हरिभक्त प्रागजी भक्तके प्रति गुरुभाव

रखकर उनकी सेवा करते थे। वड़ोदराके बद्रीनाथ शास्त्री–और वडोदरा मंदिर के द्राविडी शास्त्री रंगाचार्यजीको भी प्रागजी भक्तकी ब्रह्मस्थितिकी प्रतीति हुई थी। उनके अद्वैतमतके संस्कार लुप्त हो गये। आचार्य श्री विहारीलालजी महाराज भी समागमके लिये कभी कभी उनको अपने यहाँ बुलवाते थे। त्यागियोंमें वापु रतनजी, जगन्नाथानंद स्वामी, शान्तानंद स्वामी, वासुदेवानंद स्वामी, वासुदेवचरणदासजी, उपेन्द्रानंद स्वामी आदि कई संतोंको यह प्रतीति हो गई थी कि प्रागजी भक्तका श्रीजी महाराजके साथ साक्षात् संवंध है। उनमें शास्त्री यज्ञपुरुपदासजी, विज्ञानदासजी, महापुरुपदासजी, नारायणदासजी आदि संत उनके प्रथम पंक्तिके शिष्य थे। शास्त्री यज्ञपुरुषदासजीके प्रति उनको अपार स्नेह था, वे उनको 'कोडीलो लाल' (लाडला वालक) और 'सवके दिलोंको स्वच्छ करनेवाली वुहारी' कहकर अपना प्रेम एवं उनकी महत्ता व्यक्त करते थे। यज्ञपुरुपदासने भी वड़े वड़े व्यक्तियोंकी मुहव्वत को छोडकर प्रागजी भक्तको अपने 'ज्ञानगुरु' मान लिया था, उनकी महिमा कई लोगोंको समझाई थी। उन्हींके समागमसे रंगाचार्यजीको प्रागजी भक्तके प्रति आदर पैदा हुआ था। अपनी पूरी शिष्यमण्डलीमें यज्ञपुरुपदासजीके लिये प्रागजी भक्त कहते थे कि 'यह तों जिन्दा जीव है।'

जूनागढ के साधु वालमुकुन्ददासजी प्रागजी भक्त के विषय में कहते थे 'उन्होंने गुणातीतानंद स्वामी को इतना प्रसन्न किया है कि उनको यदि सुवर्ण के सिंहासन पर विठलाकर उनकी सुवर्ण की आरती उतारी जाये तो भी कम है।' उनकी ब्राह्मी स्थिति देखकर खंभात के कवि रेवाशंकर कहते थे कि 'श्रीजी महाराज आज प्रागजी भक्तके द्वारा प्रकट हैं।'

प्रागजी भक्त के द्वारा अक्षर और पुरुषोत्तम के स्वरूपों के

ज्ञान की प्रवृत्ति गुजरात में भी फैली। यह ज्ञान सोरठ से गुजरात में पहुँचा। वह धीरे धीरे फैलाता ही गया, मुमुक्षुओं-के जीवन में उतरता ही गया। संप्रदाय का प्रचार–प्रवाह बडी तेजी के साथ आगे बढता ही चला गया। उस प्रवाह को रोकने के कई प्रयत्न जैसे गुणातीतानंद स्वामी के समय में हुए थे, वैसे ही इनके समय में भी हुए। लेकिन उसे कोई रोक नहीं पाया। क्योंकि सनातन ज्ञान का यह प्रवाह सारे विश्व को घेरने के लिये ही श्रीजी महाराजने अक्षरधाम से वहाया था। उनकी यह भावना थी कि सभी लोग इस शान्त प्रवाह में स्नान करें, और पावन हों। श्रीजी महाराज यह कतई नहीं चाहते थे कि महावाढ के वेग में लोग बहते जायें, मरें और अन्त में किसी अनजान किनारे पर वे पहुँचकर उलझ जायें। वाढका वेग जितने जोरों से आता है, उतने ही जोरों से शान्त हो जाता है, अन्त में भरी नदियाँ भी सूख जाती हैं।

प्रागजी भक्त ने शास्त्री यज्ञपुरुषदासजी में गुणातीत–रस उँडेलने के लिये उत्तम पात्र का दर्शन किया। अतः उन्होंने शास्त्रीजी महाराजको आदेश दिया कि 'हरिभक्तों को वातें करके प्रसन्न रखना।' 'शास्त्रविद्या तुमने संपादन की ही है और ब्रह्मविद्या तो मैंने पूरी पढा दी है। किसी वात की कमी नहीं है, इसलिये तुम्हें जैसे सुखी रहने को आता है, वस उसी तरह औरों को भी सुखी करो।' इस प्रकार उन्होंने अपने अनुगामी का परिचय करवाया।

अन्तर्धान होते समय प्रागजी भक्त 'मुझे वडताल पहुंचाओ' यह वाक्य तीन वार बोले। उस वक्त वहाँ उपस्थित प्रभुदास कोठारी, जेठा भगत आदि उपरोक्त कथन का रहस्य समझ गये। वडताल स्थान के शास्त्री यज्ञपुरुषदास द्वारा श्रीजी महा-

राज के प्राकटय का संकेत प्रागजी भक्तने इस प्रकार कर दिया । ब्रह्म-परब्रह्म के सनातन ज्ञान के उपदेष्टा, संविधाता इस तरह धरती पर अखंड प्रकट होते रहे । मूल अक्षरमूर्ति गुणातीतानंद स्वामीने कहा था, मैं चिरंजीवी हूँ । ' उनका यह चिरंजीवी पद आज उनके अनुगामी द्वारा प्रत्यक्ष हो रहा था । उन्होंने यह भी कहा था कि ' पत्तो पत्ते पर स्वामिनारायण का भजन होगा । ' इस विधान का मतलब स्थूलबुद्धिवाले हम जैसे मानव आज शायद भले ही न समझ सकें, परंतु आर्ष-द्रष्टा की परावाणी जब भविष्य मिटकर वर्तमान बनेगी तभी वह समझ में आयेगी ।

स्वामीश्री यज्ञपुरुषदासजी-शास्त्रीजी महाराज का कार्य इस लोक की दृष्टि से बहुत कठिन था । उन्होंने सोचा कि ' अक्षर और पुरुषोत्तम के दिव्य स्वरूपों का ज्ञान तो सत्संगमें फैलने लगा है, फिर भी उन स्वरूपों की उपासना और उन स्वरूपों के यथार्थ ज्ञान के प्रचार के विषय में लोगों में जो साम्प्रदायिक जडता है, वह अवरोधरूप है ।

उनमें पुरुषोत्तम की अमोघ शक्ति तो थी ही । और पूर्ण पुरुषोत्तम नारायण का भी अपने प्राकटय का यही मात्र हेतु था कि अपने स्वरूप का और अपने अनादि अक्षरधामरूप गुणातीतानंद स्वामी के स्वरूप का ज्ञान संसार में फैले, क्योंकि उनकी उपासना से आत्यान्तिक कल्याण अथवा शुद्ध गुणातीत स्थिति सिद्ध होगी, यह सिद्धान्त था । उन्होंने वचनामृत में भी स्पष्ट कहा है कि ' कल्याण के लिये भगवान अपना अक्षर-धाम, समग्र पार्षदगण एवं अपना ऐश्वर्य लेकर ही वे धरती पर पधारते हैं... इसलिये भगवान के भक्त को भगवान का स्वरूप अक्षरधाम के साथ पृथ्वी पर विराजमान हैं ऐसा समझकर

औरों के आगे भी यह बात करनी चाहिये।' ० स्वामीश्री शास्त्रीजी महाराज का यह उपदेश था, उनके शब्द अपरोक्षानुभूतिके थे।

श्रीजी महाराज के उपदेश के अनुसार ही उन्होंने स्वामी और नारायण अर्थात् अक्षर और पुरुषोत्तम इन दो सनातन स्वरूपों के ज्ञान की बातें अविरतरूप से करना शुरू कर दिया। इसी कार्य को लेकर वे गुजरात और सौराष्ट्र के देहातों में सतत विचरण करने लगे। उनकी भक्ति एवं सत्यनिष्ठा के कारण मुमुक्षुओं में यह सनातन ज्ञान फैलने लगा। उनको अपने ही जैसे कई सत्यनिष्ठावाले संतों का सहयोग मिला, जिससे उनके कार्य में वेग आया। कुछ ही समय में उन्होंने बोचासण, सारंगपुर, गोंडल, अटलादरा (वडोदरा) और गढडा में भव्य मंदिरों का निर्माण किया। उन मंदिरों में स्वामी और नारायण की अर्थात् अक्षर और पुरुषोत्तम की मूर्तियों की प्राण-प्रतिष्ठा की। शुद्ध उपासना का प्रसार शुरू हो गया। उनके इस कार्य में सहयोग देने के लिये जूनागढ से भी संतमंडली आई। उसमें 'जोगी' भी आये, अतः शास्त्रीजी महाराज को राहत मिली।

लोगों को प्रतीति हुई कि यह कार्य श्रीजी महाराज का ही है, अन्यथा इतना तगड़ा विरोध होते हुए भी ऐसा कार्य होना संभव नहीं। श्रीजी महाराज स्वयं शास्त्रीजी महाराज द्वारा अपनी और अपने धामरूप अक्षरब्रह्म की उपासना का प्रसार करवा रहे थे और शुद्ध उपासना तथा गुणातीत ज्ञान की नींव पाताल में पहुँचा रहे थे।

उनके सहयोगी योगीजी महाराज और निर्गुणदास स्वामी के सहकार से विशुद्ध उपासना के इन दो स्वरूपों का ज्ञान देश-

० वचनामृत ग. प्र. ७१

विदेशों में फैलने लगा। सबको यह सत्संग दिव्य लगने लगा। शास्त्रीजी महाराज के कार्य में कोई रुकावट कामयाव न हुई। कारण कि उनके साथ स्वयं महाराज थे, धर्मनियमधारी कई एकान्तिक संत थे और बुद्धिजीवी सत्संगी थे। शास्त्रीजी महाराज की अप्रतिम प्रतिभा के कारण इस दिव्य सत्संग के प्रति बड़े बड़े लोग-प्रधान, प्राध्यापक, डॉक्टर, अमलदार आकर्षित हुए। सभीको स्वामिनारायण के इस सत्संग में कुछ नूतन तत्त्व दिखाई दिया। दरवार गोपालदासने कहा कि 'यह सत्संग केवल काठी कोलियोंका ही है, ऐसा मैं मानता था, शास्त्रीजी महाराजने इस सत्संग में ब्रह्म-परब्रह्म का संपूर्ण ज्ञान प्रकट किया तब सत्संग की महत्ता मेरी समझ में आई।' श्री कनैयालाल मुनशीने कहा 'शास्त्री यज्ञपुरुषदास को यदि वडताल संस्थाने सम्हाल लिया होता तो उन्होंने स्वामिनारायण का नाम सारे भारत वर्ष में व्यापक कर दिया होता, ऐसी उनकी दिव्य प्रतिभा है।'

शास्त्रीजी महाराजने शुद्ध उपासना-अक्षर और पुरुषोत्तम के स्वरूपो की-प्रचलित की, मंदिर बनवाए, उन दोनों स्वरूपों की उनमें प्रतिष्ठा की और 'यावच्चन्द्रदिवाकरौ' उन दोनों स्वरूपों की उपासना होती रहे ऐसा प्रवन्ध भी कर दिया। गोपालानंद स्वामी के शब्दों की उन्होंने याद करवा दी 'घेला नदी के दोनों किनारों पर मांडवधार तक मंदिरों का ताँता लग जायेगा।' उन्होंने यह भी कहा था कि 'बोटाद और सारंगपुर एक हो जायेंगे, सारंगपुर के मंदिर की महिमा देश-विदेशों में फैलेगी।'

असल जूनागढी गुणातीत संत जोगी महाराज को देखकर उन्होंने कहा 'इस जोगी में और मुझमें एक रोम का भी फर्क नहीं है... मैं ही जोगी हूँ और जोगी वह मैं हूँ... जोगी जैसे साधु अनंत कोटि ब्रह्मांड में भी नहीं मिलेगा।'

जोगी महाराज और शास्त्रीजी महाराज में यह आध्यात्मिक एकता थी। ये दो स्वरूप जिनको अलग दिखाई देते थे, उनकी भेददृष्टि, मायिक दृष्टि थी। उनकी आकृति भले ही भिन्न थी, स्वरूप एक था। 'छो तो एक ने दीसो छो दोय, तेनो मर्म जाने जन कोय' (हो तो एक, दिखाई देते हो दो, इसका मर्म शायद ही कोई जान सकता है।) ऐसा इन दो स्वरूपोंमें ऐक्य था।

शास्त्रीजी महाराज अन्तर्धान हुए, परन्तु योगीजी महाराज द्वारा श्रीजी महाराज का प्राकट्य तो अखंड ही रहा। कुछ लोग पहले कहते थे कि 'यह तंत्र शास्त्रीजी महाराज हैं, तब तक चलेगा, बादमें खतम हो जायेगा, लेकिन 'पिता पुत्रेण जायते' ऐसा हुआ। इसका मतलब तो वही समझ सकता है, जिसने उस गुणातीत सत्पुरुष का सेवन किया हो।

योगीजी महाराज की गुणातीत प्रतिभा से न केवल संप्रदाय के ही, अपि तु संप्रदाय के बाहर के कई विद्वान भी आकर्षित हुए थे। विद्वान शास्त्री पांडुरंग आठवले ने कहा था 'योगीजी महाराज को देखते ही मैं नतमस्तक हो गया।' श्रीरंग अवधूत महाराजने कहा था 'यज्ञपुरुषदास का पुण्यनाम संप्रदाय के सहस्त्रावधि, लक्षावधि नरनारियों की जीभ पर रखने का उन्होंने भगीरथ प्रयत्न किया है'। श्री गुलझारीलाल नन्दाजी को शास्त्रीजी महाराजने कहा था कि 'ये जोगी महाराज आपकी अखंड रक्षा करेंगे।' 'उनके सान्निध्य में सर्वथा कल्याणवृत्ति का ही अनुभव होता है।' ये उद्गार थे श्री बाबुभाई जशभाई पटेल के। भक्तिरसार्द्र श्री कृष्णशंकर शास्त्री कहते थे 'उनका सान्निध्य प्राप्त कर उनके पास से जीवन में भक्ति प्राप्त कर लेनी चाहिये।'

राज्यकवि श्री दुला काग भी उनके स्वरूप में आकर्षित होकर गा उठे 'जोगीने जोवा गया ते झडपाणा' (जोगी को जो देखने गये वे उनके ही हो गये)

इन महानुभावों के ये शब्द योगीजी महाराज की प्रतिभा के द्योतक हैं । कहे जाते संप्रदाय के वर्तुल के बाहर उनके पदचिन्ह थे । उनको स्वामी और नारायण अर्थात् अक्षर और पुरुषोत्तम के सनातन दिव्य स्वरूपों की विश्व की आध्यात्मिक पीठ पर प्रतिष्ठा करनी थी । एक वर्तुल के भीतर बैठे रहना उनको पसंद नहीं था । उन्होंने अफ्रिका में—मोम्बासा, कंपाला, जिन्जा, टरोरो, गुलु और नैरोबी में भी मंदिर बनवा दिये । उनमें अक्षर और पुरुषोत्तम के युगल स्वरूपों की प्रतिष्ठा की । 'आसमुद्रान्तसत्कीर्तिः' श्रीजी के इस नाम की महिमा उन्होंने सार्थक कर दिखाया । अन्तिमावस्था में इंग्लेन्ड जाकर लंडन शहर में भी भव्य मंदिर का निर्माण किया । इस तरह पश्चिम को योगीजी महाराजने पूर्व के सूर्य का उपहार दिया । इस सूर्य के प्रकाश से ही अज्ञान–अन्धकार का नाश होगा ।

लंडन विदा होते समय उनको हिथ्रो एरपोर्ट पर अमरीका पधारने का आमंत्रण मिला तो हँसते हुए वे बोले कि 'अब वहाँ तो प्रमुख स्वामी पधारेंगे ।

श्री अक्षर पुरुषोत्तमकी शुद्ध सनातन उपासनाका परदेशमें दिग्विजय करके वे भारत लौटे । अब उन्होंने भी लीला का उपसंहार करनेका निश्चय कर लिया । कलकत्ताके हरिभक्तोंने वहां होनेवाले नवीन मंदिरके खातमुहूर्तके लिये जब उनको आमंत्रण दिया, तब उन्होंने कहा 'अब वहाँ प्रमुख स्वामी पधारेंगे, उनमें मैं आ ही गया ।'

शास्त्रीजी महाराजने सत्संगके प्रांगणमें प० पू० प्रमुख स्वामी को जब बुलवाया, तब उन्होंने कहा था 'मैं इसके जीवको पहचानता हूँ।' बाद में उनको संस्थाके प्रमुख पद पर बिठाया। योगीजी महाराज जैसे गुण इनमें भी विकसित हों, ऐसा संकल्प करके ऐसे आशीर्वाद देनेके लिये योगीजी महाराजको उन्होंने आदेश दिया। प्रमुख स्वामी ऐसे पात्र थे, इसी लिये शास्त्रीजी महाराजकी दृष्टि उन पर पड़ गई थी, उन्होंने इस गुणातीत आत्माको बराबर पहचान लिया था।

सत्संगकी विशेष—अतिविशेष अभिवृद्धि हो ऐसा संकल्प करते हुए योगीजी महाराजने कहा था 'सात सौ साधु होंगे, देश विदेशमें सत्संगका अधिकाधिक विकास होगा, यह सब प्रमुख स्वामी द्वारा होगा, ये शास्त्रीजी महाराजका साक्षात् स्वरूप हैं, उन दोनोंमें एक रोमका भी फर्क नहीं है।' यदि शास्त्रीजी महाराज के कथनानुसार उनमें और योगीजी महाराजमें एक रोमका भी फर्क नहीं, तो प्रमुख स्वामी और योगीजी महाराजमें एक भी रोमका फर्क हो ही नहीं सकता, यह सीधा हिसाब है। इस प्रकार योगीजी महाराज, अपने उत्तराधिकारीका परिचय करवाकर अन्तर्धान हो गये।

उन्होंने अपने अन्तिम समयमें सब को कहा कि 'प्रमुख स्वामी मेरे सर्वस्व हैं।'

संस्थाकी अनेकविध लोकोपकारक प्रवृत्तियों—मन्दिरों—संस्कार धामोंकी रचना, राहतकार्य, जनजागृति, बालक एवं युवकोंका चारित्र्यनिर्माण सांस्कृतिक कार्य, पाठशाला, गुरुकुल, संस्कृत संगीत—ललित कलाओं को उत्तेजन, आदिवासी उत्कर्ष, तबीबी सहाय, पुस्तकालय, बुकबैंक, शिष्य-वृत्ति आदि—के मध्य बिन्दु प्रमुख स्वामी ही हैं। उनके संकल्प, प्रेरणा, आदेश, उत्साह और

दिनरातके सतत विचरण से ये सारी प्रवृत्तियाँ दिन व दिन वढ़ती जाती हैं ।

'भगवान स्वामिनारायण द्विशताब्दी महोत्सव' के उपलक्ष्य में समाज कल्याणके इन सभी कार्योंको योग्य तरीके से वेग मिले, इसके लिये प्रमुख स्वामी कमर कसकर प्रयत्नशील हैं ।

भारतीय संस्कृतिके प्रसारके लिये की गई तीनों विदेशयात्राओंमें प्रमुख स्वामी भारतीय एवं पाश्चात्य संस्कृतिके आध्यात्मिक सेतु वन रहे थे । विदेशोंमें भी संस्कारधाम रूप कई मंन्दिरोंका निर्माण उनके हाथों सम्पन्न हुआ है । केन्याके प्रमुख स्व० श्री केन्याटा, वर्तमान प्रमुख श्री मोई, टान्झानियाके प्रमुख न्यरेरे, मोरेशियसके प्रमुख श्री सर रामगुलाम, केनेडाके प्रमुख श्री ट्रुडो, भारतके पंतप्रधान श्री मोरारजी देसाई (लंडनमें), आर्क विशप ऑफ केन्टरवरी श्री रामसी, चीफ रवाई आदि और विभिन्न देशोंके प्रधान, राजदूत, शहरोंके मेयर, चर्चोंके पादरी अन्य धर्मगुरु आदि विशिष्ट व्यक्तियोंने उनके सम्पर्कसे प्रभावित होकर धन्यताका अनुभव किया है । आज वे केवल एक संप्रदायके नहीं रहे हैं, अपि तु समग्र विश्व के मूर्धन्य पुरुष बने हैं । उनके लोककल्याणकारी कार्योंकी वरोहें आज देशपरदेशमें पनप रही हैं ।

गुणातीतकी परंपरा अखंडित है और उस गुणातीत संत द्वारा श्रीजी महाराजके कार्योंकी झांकी आज सवको हो रही है । सत्संग पूर्व अफ्रिकासे इग्लेंड गया, वहाँसे प्रकट ब्र० स्व० प्रमुख स्वामीके द्वारा वह अमरीका एवं केनेडा पहुँचा । वहाँसे सत्संग दक्षिण अफ्रिका गया । इस प्रकार प्रमुख स्वामी श्रीजी महाराज एवं सत्संगको विश्वव्यापक बना रहे हैं ।

'संप्रदाय माने संकुचित दृष्टि' ऐसा समझनेवाले और उसी वर्तुलमें रहनेवाले लोग, क्षितिजके उस पार फैलती दिव्यताको कैसे देख सकते हैं ? आज इस संप्रदायकी दीवारें विशाल होती जा रही हैं। सत्संगका परिघ धीरे धीरे अवश्य अपरिमित होगा यह निर्विवाद है। गुणातीतका यह वचन है, श्रीजी महाराजका यह संकल्प हैं।

प्रमुख स्वामी द्वारा श्रीजी महाराजके कार्यकी झाँकी हो रही है। जिन्होंने उनसे ही बुद्धियोग प्राप्त किया है, उनको वह दिखाई देता है। संप्रदाय जीवंत है श्रीजी महाराज प्रकट हैं।

इस पुस्तिका जिस ग्रंथ पर आधारित है
इस पुस्तिकामें जिस ग्रंथके संदर्भ दिये गये हैं
वह ग्रंथ है

वचनामृत

भगवान स्वामिनारायण की परावाणी
तत्वज्ञानका सरल एवं शिरमौर ग्रंथ
अभी हिन्दीमें सुप्राप्य

वचनामृत

(हिन्दी भाषांतर कर्ता : श्री रामवल्लभ शास्त्री)
पृ. ६६२ : मूल्य रु. ६०-००
बोचासणवासी श्री अक्षरपुरुषोत्तम संस्था के सहयोग से
भारतीय विद्या भवन (बंबई) द्वारा प्रकाशित

बोचासणवासी श्री अक्षरपुरुषोत्तम संस्था

भगवान स्वामिनारायण के द्वारा प्रबोधित 'अक्षर–पुरुषोत्तम की उपासना, अर्थात् स्वयं अक्षररूप होकर पुरुषोत्तम की भक्ति करना,' इस सनातन सिद्धान्त के प्रवर्तन के लिये ब्रह्मस्वरूप स्वामी श्री यज्ञपुरुषदासजी (शास्त्रीजी महाराज) ने सं. १९६२ में इस संस्था की स्थापना की।

उन्हों ने उपासना के प्रसार के लिये शिखरबद्ध मंदिरों का निर्माण करके उनमें भगवान स्वामिनारायण की उन के परम भक्त गुणातीतानंद स्वामी के साथ अर्थात् पुरुषोत्तम की अक्षर के साथ मूर्ति प्रतिष्ठित की।

उन के अनुगामी स्वामीश्री योगीजी महाराज ने, निर्दोष संतप्रतिभा एवं निःस्वार्थ प्रेमभावके द्वारा असंख्य मनुष्योंको, विशेषतः युवावर्ग को धर्माभिमुख किया, समाज में विलुप्त होती सी धर्मश्रद्धा को पुनर्जीवन दिया, देश प्रदेशोंमें अनेक संस्कार केन्द्रों की स्थापना की।

वर्तमानकालमें उन के अनुगामी स्वामीश्री नारायणस्वरूपदासजी (प्रमुख स्वामीजी) उसी कार्यक्रमों को विशेष विस्तृत कर रहे हैं। अकाल एवं संकटग्रस्त पीडितों को राहत, विद्यार्थीओं को शैक्षणिक सहाय, वैद्यकीय सहाय, आदिवासी एवं पिछडी जातियों में संस्कार सिंचन, दवाखाना, संस्कृत–संगीत पाठशाला, हाईस्कूल, गुरुकुल, साहित्य प्रकाशन, कला उत्तेजन, मंदिर–निर्माण, संस्कार–केन्द्रों का संस्थापन इत्यादि अनेकविध लोकोपकारक प्रवृत्तियों से प्रमुख स्वामीजी समाज को भक्तिरस से नवपल्लवित रख रहे हैं।

अक्षरपुरुषोत्तम विषयक तत्त्वज्ञान को वेदादि शास्त्रों का पूरा आधार है, इसलिये इस में दिव्यता और आकर्षण है। यह प्रेम का, आध्यात्मिक जागृति का तथा साधना का राजमार्ग है।

निर्भय और निःशंक होकर आईये, भगवान स्वामिनारायण हम सब पर आशीर्वाद बरसा रहे हैं।

भगवान स्वामिनारायण द्विशताब्दी महोत्सव
विविध प्रकाशन

१.	वचनामृत	६०—००
२.	भगवान स्वामिनारायण (सचित्र)	४—००
३.	शिक्षापत्री (सचित्र)	२—००
४.	शिक्षापत्री	१—००
५.	वचनामृत बिन्दु	००—७५
६.	भगवान स्वामिनारायण	,,
७.	भगवान स्वामिनारायण—संगीत कलाके परिपोषक	,,
८.	संप्रदायका विकास एवं गुरुपरंपरा	,,
९.	भगवान स्वामिनारायण—समाज सुधारक	,,
१०.	अक्षरमूर्ति गुणातीतानंद स्वामी	,,
११.	गोपालानंद स्वामी	,,
१२.	नित्यानंद स्वामी	,,
१३.	ब्रह्मानंद स्वामी	,,
१४.	मुक्तानंद स्वामी	,,

साहित्यक्षेत्र के सिद्धहस्त लेखकों के द्वारा अन्य पुस्तिकाएं प्रकाशित हो रही हैं।

: प्रकाशक :

बोचासणवासी श्री अक्षरपुरुषोत्तम संस्था
शाहीबाग रोड, अहमदाबाद—३८०००४.

स्वामिनारायण मुद्रण मंदिर - अहमदाबाद ३८०००४